

आग में ईंधन डालना: राजनीतिक दल और भूमि अधिग्रहण को लेकर संघर्ष

Adding Fuel to the Fire: Political Parties and the Struggles Over Land Acquisition

संजय चक्रवर्ती

Sanjoy Chakravorty

June 20, 2011

नंदीग्राम, सिंगूर, पॉस्को, यमुना एक्सप्रेस, जैतपुर, महा मुंबई. यदि कोई भी भारत में इस समाचार का अनुसरण करे तो उन तमाम स्थलों और परियोजनाओं के नामों को जान लेगा जहाँ भूमि अधिग्रहण को लेकर कोई न कोई गंभीर वारदात हुई हो. लेकिन शायद ही किसी ने कर्नाटक में हुक्केरी, महाराष्ट्र में नांदेड़, आंध्र प्रदेश में लोअर पेनगंगा घाटी या गुजरात में महुआ का नाम सुना हो? ये नाम भी उन स्थलों के हैं जहाँ भूमि अधिग्रहण को लेकर टकराव की नौबत आ गई है, लेकिन न तो यहाँ कोई गोलीबारी हुई, न किसी की मौत हुई; कम ड्रामेबाजी हुई, कम संघर्ष दिखाई पड़ा और कम ही कैमरों का इस्तेमाल हुआ.

क्यों? क्या अंतर है इन दोनों में? न तो इसका कारण अधिग्रहीत भूमि का आकार है और न ही कोई खास जगह. मुझे लगता है कि जब कभी कोई बड़ा राजनीतिक दल इस प्रकार के टकराव में किसी एक का पक्ष लेने लगता है तो स्थानीय टकराव का मुद्दा राष्ट्रीय मुद्दा बन जाता है और आग और भी तेज़ी से भड़क उठती है और यह लोगों की नज़र में भी ज़्यादा आने लगता है. छोटे-मोटे विवाद संघर्ष का रूप ले लेते हैं. भारतीय राजनीति में यह एक नया आयाम है.

स्वतंत्र भारत में भूमि अधिग्रहण का इतिहास कई दृष्टियों से काफी दुःखद रहा है. अब तक विकास परियोजनाओं के लिए बीस से साठ मिलियन लोगों को विस्थापित किया जा चुका है. ऐसा लगता तो है कि राजनीतिक दलों की पहले से ही इस मुद्दे में दिलचस्पी रही है, लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता. राजनीतिक दलों की भूमि सुधार और भूमि पुनर्वितरण के काम में दिलचस्पी थी, लेकिन भूमि अधिग्रहण, जिसे विपरीत अर्थों में भूमि पुनर्वितरण भी कहा जा सकता है, का मतलब है, गरीब लोगों से ज़मीन लेकर उसे अमीर लोगों को देना. लगभग पिछले आधे दशक से पहले राजनीतिक दलों में इस मामले को लेकर कोई उत्साह नहीं था. उनकी इस मामले में दिलचस्पी न होना भी अपने-आप में दिलचस्प है और इससे सब कुछ साफ़ भी हो जाता है, लेकिन इस पर चर्चा करने का यह उचित स्थान नहीं है.

राजनीतिक दलों की हाल ही में भूमि अधिग्रहण के संबंध में की गई कार्रवाई को अवसरवादी ही कहा जा सकता है; आम तौर पर कोई भी दल अपनी सत्ता के भौगोलिक इलाके में तो भूमि

अधिग्रहण का समर्थन करता है और जहाँ वह सत्ता में नहीं है, भूमि अधिग्रहण का विरोध करता है. इस गतिशीलता से कुछ मामले थोड़े-बहुत भिन्न भी हो सकते हैं. लेकिन बुनियादी तथ्य यही है कि यदि अनेक उदाहरणों को देखा जाए तो अवसरवादिता की बात ही अधिक प्रमाणित होती है.

यूपीए की मुखिया कांग्रेस पार्टी सन् 2004 से केंद्र में सत्ता में है और 2005 के सेज़ (विशेष आर्थिक क्षेत्र) अधिनियम की मूल रचयिता भी है. यही वह मूल घटना है, जिससे ज़मीनी संघर्ष की शुरुआत हुई. लगता है कि कांग्रेस पार्टी की यह धारणा रही है कि भूमि अधिग्रहण से कृषि योग्य भूमि को गैर- कृषि भूमि में बदला जा सकता है और इससे राष्ट्रीय कल्याण में वृद्धि होती है. लेकिन यही कांग्रेस पार्टी पॉस्को और वेदांत की परियोजनाओं को आम तौर पर राष्ट्रीय कल्याण में बाधक मानती है, क्योंकि ओड़िसा में भाजपा के समर्थन से चलने वाली बीजू जनता दल की राज्य सरकार विरोधी दल की है. कांग्रेस पार्टी, विशेषकर राहुल गाँधी बसपा नेता और उत्तर प्रदेश में उनकी विरोधी पार्टी की चतुर नेता मायावती की प्रिय यमुना एक्सप्रेस की परियोजना के मामले में भूमि अधिग्रहण को लेकर संघर्ष करने वाले किसानों का मुखर और स्पष्ट समर्थन कर रहे हैं. इसी समय गोआ की कांग्रेस पार्टी ने सेज़ नीति से ही किनारा कर लिया है. इस प्रकार गोआ एकमात्र राज्य है, जिसने भूमि अधिग्रहण संबंधी छोटी-बड़ी परियोजनाओं के स्थानीय मुखर विरोध के कारण सेज़ नीति को तिलांजलि दे दी है

आशा के अनुरूप भाजपा ओड़िसा में पॉस्को को भरपूर समर्थन दे रही है. परंतु महाराष्ट्र में, जहाँ कांग्रेस और राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी मिलकर एक दशक से अधिक समय से सत्ता में काबिज हैं, भाजपा और शिवसेना की संयुक्त युति सिविल सोसायटी के साथ (हाल ही में) मिलकर रायगढ़ में महा मुंबई सेज़ को रोकने की कोशिश में लगी है. महाराष्ट्र में लगभग 150 अनुमोदित सेज़ (विशेष आर्थिक क्षेत्र) हैं और भाजपा और शिवसेना की संयुक्त युति ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सेज़ (विशेष आर्थिक क्षेत्र) और भूमि अधिग्रहण का विरोध अगले चुनाव का मुख्य मुद्दा होगा. अप्रैल 2011 में शिवसेना ने रत्नागिरी ज़िले में जैतपुर परमाणु शक्ति परियोजना के हिंसक आंदोलन का नेतृत्व किया था. उसी समय कर्नाटक में जहाँ भाजपा नीत गठबंधन सत्ता में है, पार्टी की स्थानीय शाखा और विश्व हिंदू परिषद (वीएचपी) सहित उनके सहयोगियों ने मेंगलोर (सेज़) का विरोध करना शुरू कर दिया है, क्योंकि यह परियोजना उनके अपने राज्य में केंद्र सरकार की परियोजना के रूप में देखी जाती है.

भारतीय साम्यवादी दल के कार्यकलापों में कोई असमानता नहीं है: मार्क्सवादी (सीपीएम) पार्टी एक ऐसी पार्टी है, जिसकी पहचान एक समय में ऑपरेशन बर्गा के रूप में की जाती थी, इस

पार्टी ने देश में भूमि सुधार की सर्वाधिक सफल नीति का संचालन किया है. पश्चिम बंगाल में नंदीग्राम और सिंगूर, दो ऐसी भूमि अधिग्रहण परियोजनाएँ हैं, जो देश की ऐसी सबसे अधिक असफल भूमि अधिग्रहण परियोजनाएँ हैं, जो एक ऐसे राज्य में हैं जिसमें तीन दशक से अधिक समय से सीपीएम नीत वामपंथियों का शासन रहा है और मई 2011 में राज्य की विधान सभा के चुनाव में उनकी हार हुई है. दोनों ही मामलों में राजनीतिक संघर्ष का नेतृत्व तृणमूल कांग्रेस (केंद्र में कांग्रेस के अस्थायी सहयोगी दल के रूप में) ने किया. उनके संघर्ष की परिणति राज्य के विधान सभा के चुनाव में उनकी विजय के रूप में हुई. केरल में सीपीएम द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी पार्क के लिए ज़मीन पर जबरन कब्ज़ा करने की वारदातों की जानकारी बहुत कम लोगों को है. इस अधिग्रहण की प्रक्रिया में उन्होंने न्यूनतम कानूनी मानदंडों का भी पालन नहीं किया. हरेक दूसरे राज्य में और दिल्ली की संसद में सीपीएम सेज़ और निजी हितों के लिए भूमि अधिग्रहण का लगातार विरोध करता रहा है.

इसमें संदेह नहीं है कि देश के बड़े राजनीतिक दलों के हथकंडे और कारनामे परेशानी पैदा करने वाले और अवसरवादी रहे हैं. इस प्रकार की पाखंडबाजी बहुत अल्पगामी होगी. अब यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं रह गई है कि कोई राजनीतिक दल स्थानीय या क्षेत्रीय मामले में किसका साथ देता है. सबसे अधिक ज़रूरी है संगठनात्मक शक्ति, जनबल और धनबल और एक ऐसा दृश्य जिसे राजनीतिक दल किसी खास मकसद से सामने रखते हैं. ये रूपांतरकारी हो सकते हैं. छोटा-मोटा संघर्ष भी बड़ी और हिंसक घटनाओं में रूपांतरित हो सकता है. सिंगूर का मामला इसका प्रमाण है. सवाल यह है कि यदि तृणमूल कांग्रेस ने इसे राजनीतिक युद्ध का मैदान न बनाया होता तो क्या घटनाओं की परिणति जैसी हुई है, वैसी हो पाती. सिंगूर का मामला एक अतिवादी मामला हो सकता है, लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं है कि राजनीतिक दलों का प्रवेश भले ही देरी से होता हो या कुछ ही चुर्नीदा मामलों (क्योंकि सभी विवादों पर राजनीतिक दलों का ध्यान नहीं जाता) में होता हो, भूमि अधिग्रहण के विवादों को बुरी तरह से उलझा ज़रूर देता है.

यूपीए सरकार संसद के मानसून सत्र में भूमि अधिग्रहण का नया विधेयक लाने जा रही है. विधेयक से न केवल राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण के संबंध में किए जाने वाले ऐतिहासिक अन्याय से बचने के लिए उपाय खोजे जाएँगे, बल्कि राज्य और राजनीतिक दलों दोनों के ही दंश को कम करने के लिए आवश्यक उपाय किए जा सकेंगे. इसके लिए एक नए संस्थागत ढाँचे की आवश्यकता होगी: प्रभावित लोगों को सही सूचनाएँ और ज़मीन के दाम की सही जानकारी देना और भूमि अधिग्रहण की बड़ी परियोजनाओं के लिए राजनीतिक और नागरिक सहमति जुटाना. हाल ही में केंद्र द्वारा एक नई राष्ट्रीय निवेश एवं उत्पादन क्षेत्र नीति के सैद्धांतिक अनुमोदन की घोषणा के कारण इसकी आवश्यकता और भी बढ़ गई है. जैसा कि आम तौर पर होता है, यदि

भूमि अधिग्रहण के प्रबंधन के लिए विधेयक में किसी नए संस्थागत ढाँचे की व्यवस्था नहीं की गई तो उन्हीं अवसरवादी तरीकों के लिए गुंजाइश की आशंका बनी रहेगी.

संजय चक्रवर्ती टैम्पल विश्वविद्यालय में भूगोल और शहरी अध्ययन के प्रोफ़ेसर हैं. वे भारतीय उच्च अध्ययन केंद्र (कैसी) में दिसंबर, 2011 से विज़िटिंग स्कॉलर हैं और इस समय प्राइस ऑफ़ लैंड (भूमि का मूल्य) शीर्षक से अपनी एक पुस्तक पर काम कर रहे हैं.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>